P: ISSN NO.: 2394-0344 RNI No.UPBIL/2016/67980 VOL-3* ISSUE-4*(Supplementary Issue) July- 2018
E: ISSN NO.: 2455-0817 *Remarking An Analisation*

मारवाड़ के राठौड़ों में पट्टेदारी प्रथा (1707–1818 ई.)

महेश कुमार दायमा
असिस्टेन्ट प्रोफेसर,
इतिहास एवं भारतीय संस्कृति विभाग,
राजस्थान विश्वविद्यालय,
जयपुर

सारांश

राठौड़ राज्यों में यद्यपि ऊपरी तौर पर व्यवस्था एक जैसी थी, परन्तु इसके बाद भी उसमें मूलभूत अन्तर था। दोनों ही राज्यों में सम्पूर्ण सैन्य व्यवस्था पट्टादारी पर आधारित थी, परन्तु हमारे अध्ययन काल में बीकानेर राज्य में इस व्यवस्था का आधार 'प्रति गाँव', चाकरी के घोड़ों की संख्या निश्चित करना था, जबकि जोधपुर के गाँव को आधार न मानकर 'रेख' को आधार बनाया गया था। स्वाभाविक रूप से जोधपुर की पट्टा प्रथा पर आधारित सैन्य व्यवस्था अधिक उत्तम थी। दोनों ही राज्यों में चाकरी के और गैर चाकरी के पट्टे प्रदान किए जाते थे, तथा अपने सामन्तों और सैनिकों की व्यवस्था पर उचित ध्यान दिया जाता था। राज्यों की पट्टों की व्यवस्था ही सैनिक व्यवस्था का मुख्य आधार था।

मुख्य शब्द : मनसबदारी प्रथा, पट्टा प्रथा, राठौड़ शासक।

प्रस्तावना

तेरहवीं शताब्दी के प्रथम अर्द्ध–भाग में, मारवाड़ के अधिकांश भाग पर जालोर के चौहान राजपूतों का शासन था। प्रतिहार नगर माण्डव्यपुर (मण्डोर) भी उनके अधिकार में था।[1] चौहानों के पतन के बाद मारवाड़ में राठौड़ शक्ति का उदय हुआ और उसे मण्डोर पर अधिकार करने में करीब एक शताब्दी से कम समय लगा (1394 ई.)।[2] मारवाड़ राज्य राजपूताने के पश्चिमी भाग में स्थित है और इसका क्षेत्रफल राजपूताने की रियासतों से ही नहीं, किन्तु हैदराबाद और कश्मीर को छोड़कर भारत की अन्य सभी रियासतों से बड़ा है। राठौड़ो का आदि पुरूष राव सीहा को माना जाता है। उसका मूल गंगा–यमुना के दोआब में बदायु का क्षेत्र था। इल्तुतमिश का उस क्षेत्र पर अधिकार हो जाने के बाद 1226–1236 ई. के बीच सीहा ने राजस्थान की ओर प्रस्थान किया।

अध्ययन का उद्देश्य

इस शोध पत्र का उद्देश्य मुगलकालीन मनसबदारी प्रथा के समकक्ष पट्टा प्रथा पर आधारित सैन्य व्यवस्था को उजागर करना है कालान्तर में इसी व्यवस्था ने राठौड़ों की सैनिक व्यवस्था को निर्बल और पंगु कर दिया तथा राठौड़ शासक जमींदारों पर अत्यधिक निर्भर होने की वजह से स्वयं की सेना का निर्माण नहीं कर सके। अन्त में उनको दिसम्बर, 1817 में अंग्रेजों के साथ सैनिक सन्धि करके इस पट्टेदारी व्यवस्था को समाप्त कर दिया। इस पट्टेदारी व्यवस्था से शोधार्थी राजस्थान में प्रचलित अन्य रियासतों की जमींदारी प्रथा से तुलनात्मक अध्ययन कर सकता है तथा उसकी गुणात्मक तथा नकारात्मक अध्ययन करे निष्कर्ष निकाल में सहायक रहेगा।

गौरीशंकर हीराचन्द ओझा के अनुसार 1240 ई. जबकि कर्नल जेम्स टॉड के अनुसार 1243 ई. के आसपास कन्नौज की तरफ से राठौड़ कुँवर सेतराम का पुत्र सीहा (1250–1273 ई.) साधारण स्थिति में मारवाड़ में आया और उसके वंशजों ने क्रमशः अपना राज्य बढ़ाते हुए सारे मारवाड़ प्रदेश पर अधिकार कर लिया।[3] उन्हें के वंशज इस समय राजपूताने में जोधपुर, बीकाने और किशनगढ़ के स्वामी हैं।[4]

यद्यपि वैसे तो राठौड़ नरेश पहले से ही पराक्रम और दानशीलता में प्रसिद्ध थे, तथापि मारवाड़ के आधिपत्य से इनका प्रताप–सूर्य फिर से पूरी तौर से चमक उठा। इसी वशं में राव मालदेव जैसा पराक्रमी, राव चन्द्रसेन जैसा स्वाधीनताभिमानी और महाराजा जसवन्तसिंह प्रथम जिसने मुगल सम्राट औरंगजेब तक की अवहेलना की, ने राठौड़ों के शौर्य को बढ़ाया।
इसी से किसी कवि ने कहा है –

बल हट बंका देवड़ा, किरतब बंका गोड़।
हाड़ा बंका गाढ में, रणबंका राठौड़।

अर्थात् जिस प्रकार इस वंश के नरेश वीरता में अपना जोड़ नहीं रखते थे, उसी प्रकार दानशीलता में भी बहुत आगे बढ़े हुए थे। इनके सम्मान और दान में दिए

गांवों के कारण इस समय मारवाड़ राज्य का 83 प्रतिशत भाग जागीरदारों और शासनदारों के अधिकार में जा चुका है।

1374 ई. के बाद राठौड़ शक्ति के उत्थान का दूसरा चरण आरम्भ होता है। खेड़ के शासक कान्हड़ की मृत्यु (1374 ई.) के पश्चात् उसके भाई त्रिभुवनवसी और भतीजे मल्लीनाथ के मध्य उत्तराधिकारी संघर्ष प्रारम्भ हुआ। मल्लीनाथ (1374–1393 ई.) ने महवे में एक पृथक राठौड़ राज्य की स्थापना की तथा बाद में मल्लीनाथ ने खेड़ पर भी अधिकार कर लिया। मल्लीनाथ ने लूनी नदी तक अपने राज्य का विस्तार किया। 1393 ई. में मल्लीनाथ की मृत्यु पश्चात् चूंडा (1394–1423 ई.) ने राज्य पर अधिकार कर लिया। चूंडा ने परिहारों से वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित कर उनसे सैनिक समझौता कर लिया। राठौड़–परिहार सेना ने 1394 ई. में मण्डोर पर अधिकार कर लिया। चूंडा ने मण्डोर को अपनी राजधानी बना लिया। उसने "राव" की पदवी धारण की।[5] जोधा के समय (1438–1489 ई.) में मारवाड़ में राठौड़ शक्ति के उत्थान का तीसरा युग प्रारम्भ होता है। उसने मण्डोर से पांच मील दूर पहाड़ी पर एक गढ़ निर्मित किया तथा उसकी तलहटी में एक नई राजधानी जोधपुर को बसाया (1488 ई.)। उसने राठौड़ राज्य को नई सैद्धान्तिक मान्यता प्रदान की कि राज्य पर व्यक्ति का नहीं बल्कि राठौड़ परिवार का अधिकार रहेगा तथा शासक "समान में प्रथम व्यक्ति" एवं पुत्रों द्वारा जो क्षेत्र नये जीते गये थे उन पर विजेताओं के अधिकार को मान्यता दे कर पट्टेदारी व सामंती युग को मजबूती प्रदान की। जोधा की मृत्यु के समय मारवाड़ में राठौड़ राज्य की सीमा उत्तर में हिसार, दक्षिण पूर्व में गोड़वाड़, पश्चिम में जैसलमेर, सिन्ध तक विस्तृत हो गई थी। जोधा की मृत्यु के पूर्व उसके ज्येष्ठ पुत्र बीका (1472–1504 ई.) ने बीकानेर में स्वतंत्र राज्य की स्थापना की और जोधा ने उसे बीकानेर का शासक स्वीकार कर लिया था।[6]

भारत में 1526 ई. में मुगल शक्ति के स्थापना के साथ ही उत्तर भारत की राजनीति में मुगल–अफगान संघर्षों की शुरूआत हो गई जिसका लाभ उठाकर राठौड़ों ने राव गांगा और राव मालदेव के नेतृत्व में राजस्थान की एक प्रमुख शक्ति बनने में सफलता प्राप्त की। 1527 ई. में राणा सांगा के सहयोगी के रूप में राठौड़ों ने खानवा के युद्ध (1527 ई.) में भाग लिया। 1531 ई. में मारवाड़ की गद्दी पर राव मालदेव के आसीन होने के बाद राठौड़ शक्ति चरमसीमा पर पहुँच गई।[7] 1556 ई. में मुगल बादशाह अकबर गद्दी पर आसीन हुआ। मेड़ता का जयमल, मालदेव के विरूद्ध सहायता लेने अकबर के पास पहुँचा। बीकानेर के शासक ने भी मुगल दरबार की यात्रा इसी उद्देश्य से की। 1558 ई. व 1562 ई. में अकबर ने मिर्ज़ा सरफुद्दीन हुसैन को मेड़ता पर अधिकार करने के लिए भेजा। राठौड़ों व मुगलों की यह पहली टक्कर थी। नवम्बर, 1562 ईस्वी में मालदेव की मृत्यु के साथ मारवाड़ में राठौड़ों का स्वतंत्र शासन समाप्त हो गया।[8]

मालदेव के बाद उसका बड़ा पुत्र चन्द्रसेन (1562–1581 ईस्वी) जोधपुर का शासक बना। उसके दो भाई उदयसिंह व राम ने मुगल दरबार की शरण ले ली। चन्द्रसेन द्वारा अकबर की अधीनता स्वीकार नहीं करने से नाराज होकर मुगलों ने हुसैन कुली बेग के नेतृत्व में 1564 ईस्वी में जोधपुर पर अधिकार करके, जोधपुर को मुगल साम्राज्य में मिला लिया। वहां मुगल सरकार स्थापित कर दी गई। चन्द्रसेन मृत्युपर्यन्त राज्य की पुनः प्राप्ति के लिए संघर्ष करता रहा।[9]

11 जनवरी, 1581 ईस्वी में मुगलों से संघर्ष करते हुए चन्द्रसेन की मृत्यु हो गई। मुगलों ने 1583 ईस्वी में जोधपुर का राज्य उदयसिंह को दे दिया, यद्यपि मारवाड़ पर राठौड़ों का शासन पुनः स्थापित हो गया परंतु राठौड़ अब स्वतंत्र शासक नहीं रहे। धीरे–धीरे जोधपुर पर मुगल प्रभाव बढ़ने लगा जिसकी पराकाष्ठा 28 नवम्बर 1678 ई. में महाराजा जसवंत की मृत्यु के बाद औरंगजेब द्वारा जसवंतसिंह के नवजात पुत्र अजीतसिंह को मारने का प्रयास तथा जोधपुर को खालसा करना। इसी के साथ राठौड़–मुगल संघर्ष की शुरूआत हुई जिसका अंत 1707 ईस्वी में मुगल बादशाह औरंगजेब की मृत्यु के साथ हुआ। औरंगजेब की मृत्यु का समाचार मिलते ही अजीतसिंह ने जोधपुर पर अधिकार कर लिया।

मुगलों के पतन से सम्पूर्ण भारत में राजनीतिक परिवर्तन विशाल स्तर पर प्रभावी हो रहे थे, लेकिन राजपूत, मुगल शक्ति के छत्रछाया में रहने के आदि होने से राजनीतिक परिवर्तन में अपनी अहम् भूमिका निभाने में पूर्णतया असफल रहे। मुगल शक्ति के पतन से राजपूताने के राजनीतिक जीवन में शून्यता आ गई। अट्ठारहवीं शताब्दी में मारवाड़ ने किसी ऐसे रचनात्मक प्रतिभाशाली व्यक्ति को उत्पन्न करने में असफल रहा, जो एक नए साम्राज्य के निर्माण की कल्पना कर सकता। मारवाड़ के अजीतसिंह, अभयसिंह अपने चरित्र तथा अस्थिर नीति के कारण मुगलों के पतन से लाभ नहीं उठा सके। उनके उत्तराधिकारी बख्तसिंह, रामसिंह और विजयसिंह अपने आन्तरिक कलह तथा संघर्षों में उलझे रहने से जागीरदारों, सामान्तों पर अत्यधिक रूप से निर्भर हो गये लेकिन तब तक मारवाड़ के सामन्त भी अपने पूर्व तेज और शक्ति को बहुत कुछ खो चुके थे।

इन परिस्थितियों में मराठों के लिए राजपूताने में अपने पैर जमाना किंचित भी कठिन नहीं था। जिन परिस्थितियों के फलस्वरूप मराठों का हस्तक्षेप हुआ वह अंशतः जयसिंह की अविवेकपूर्ण नीतियों तथा राज्यों में व्याप्त अत्यधिक कुव्यवस्था की नीति का परिणाम था। मारवाड़ राज्य की शक्ति औरंगजेब के विरूद्ध संघर्ष के कारण जीर्ण–क्षीण हो चुकी थी।

16वीं सदी में राठौड़ राजपूत राज्यों में सामन्ती संगठन के निश्चित स्वरूप पर कोई उल्लेखनीय प्रकाश नहीं पड़ता है। राव मल्लीनाथ ने अपने अधिकार क्षेत्र का कुछ भाग 'भाई वन्त' के रूप में अपने भाईयों को बाँट दिया था। पुनः राव जोध के समय उनके भाईयों व बेटों ने मिलकर कई एक ऐसे क्षेत्र जीते, जिन पर पहले पूर्ववर्ती किसी राठौड़ शासक का कोई अधिकार नहीं था, ऐसे क्षेत्रों को राव जोधा ने उन क्षेत्रों को उनके विजेताओं के अधिकार में ही रहने दिया।[10] बीकानेर की भांति जोधपुर का सामन्त वर्ग भी तीन भागों में विभाजित था।[11]

1. राव जोधा के वशंज

2. राव जोधा के भाई के वंशज
3. स्थानीय जातियों के ठिकानेदार तथा मुखिया

राव जोधा ने अपने प्रशासन को सुव्यवस्थित करने हेतु नए सिरे से सामन्तशाही का पुनर्गठन किया। उन्होंने सामन्तों को दो वर्गों में विभाजित किया जिन्हें मारवाड़ में क्रमशः जीवणी और ढावी मिसल की संज्ञा दी गई। ढावी मिसल में जोधा ने अपने भाइयों को रखा तथा बांई मिसल (जीवणी) में अपने पुत्रों को स्थान दिया।

राव जोधा के भाई के वंशज

इनमें चांपा[12], भाखड़, डूंगरसी, रूपा, मंडला कारण[13], पता, वेरा, जगमाल, जेतमाल इनके नाम से अनेक खाँपे प्रचलित हुई।

स्थानीय जातियों के ठिकानेदारा तथा मुखिया

राठौड़ों के अतिरिक्त अन्य राजपूत जातियों के सामन्त भी होते थे। इसमें कुछ राजपूत तो वे थे जिनका मारवाड़ के विभिन्न क्षेत्रों पर राठौड़ों के आगमन से पूर्व अधिकार था। कम शक्तिशाली होने के कारण वे राठौड़ों के आधीन हो गए किन्तु उनकी भूमि पहले की भांति ही उनकी बनी रही।[14] राव मालदेव के देहान्त के कुछ ही समय बाद जोधपुर पर मुगलों का आधिपत्य हो जाने के फलस्वरूप जोधपुर राज्य का अस्तित्व ही समाप्त हो गया। यह स्थिति लगभग 20 वर्षों तक बनी रही। मोटा राजा उदयसिंह को जोधपुर दिए जाने पर ही इस राज्य की स्थापना हुई, तब तक मुगल शासन की अधिकांश निम्नस्तरीय परम्पराएँ जोधपुर क्षेत्र में लागू हो चुकी थी। इसी के फलस्वरूप 'भाईवन्त' के स्थान पर पट्टा व्यवस्था प्रारम्भ की गई थी। सामन्तों और अन्य प्रशासनिक अधिकरियों को राज्य की सैनिक अथव असैनिक सेवा के बदले में राज्य की और से निश्चित आय की जागीर का पट्टा प्रदान किया जाने लगा। पट्टे में इस बात का उल्लेख रहता था कि कितने घुड़सवार अथवा शुतुर सवारों से सामन्त राज्य, देश, अपना देश के बाहर चाकरी करनी होगी। रेख के आधार पर घुड़सवार तथा शुतुर सवार का निर्धारण किया जाता था।

सामन्तों को राज्य की सेवा के बदले में जागीर का पट्टा दिया जाता था लेकिन किसी कारण विशेष पर राज्य की सेवा के बिना भी जागीर के पट्टे दिए जाते थे।[15]

जागीरदारों को उत्तराधिकार कर भी देना पड़ता था जिसे "हुक्मनामा" कहते थे। आवश्यकता पड़ने पर यह कर दुगुना भी वसूल किया जाता था। जोधपुर का सामन्त वर्ग दो श्रेणियों में विभक्त था –

1. शासक के निकट सम्बन्ध
2. मुण्ड कटाई

शासक के निकट सम्बन्धी

यह सामन्त प्रथम श्रेणी के सामन्त होते थे। यह शासक के निकट सम्बन्धी होने के कारण जागीरें प्राप्त करते थे।

मुण्ड कटाई

यह दूसरी श्रेणी के सामन्त थे, इन्हें शासक के लिए युद्ध करने के बदले में जागीरें दी गई थीं। यह सामन्त इनामदार कहे जाते थे। इसके अतिरिक्त तीसरी श्रेणी में भूमिया सामन्त थे। जोधपुर के शासकों ने सामन्तों की शक्ति कम करने के लिए तथा इन्हें अपने प्रति स्वामीभक्त बनाए रखने के लिए सामन्तों तथा अन्य प्रशासनिक अधिकरियों को भी राज्य की सैनिक अथवा असैनिक सेवा के बदले में राज्य की ओर से निश्चित आय की जागीर को पट्टे में प्रदान किए थे।

यदि कोई सामन्त अपनी जागीर से सन्तुष्ट नहीं होता था तो वह उसमें परिवर्तन करवा सकता था। इसी प्रकार यदि पट्टे की रेख[16] उस जागीर की वास्तविक आय से बहुत अधिक होती थी तो सामन्त उस पट्टे में उल्लेखित रेख में कमी करवा सकता था। कभी किसी सामन्त को रेख से कम जागीर दी जाती थी तो "तलब" राशि नकद दी जाती थी। साथ ही कभी–कभी जागीर प्रदान करने में किसी कारणवश देरी होती थी तो उस समय से जागीर मिलने तक नकद वेतन दिया जाता था। व्यक्तिगत गारन्टी को भी देखा जाता था।[17]

राज्य में सामान्यतः यह प्रथा थी कि एक गाँव के ठिकाणे के गाँव को छोड़कर अन्य गाँव में से हस्तान्तरण कर दिया जाता था।

कई ठाकुरों को विशेष शक्तियां प्रदान की गई थी। प्रधान के पद पर आऊवा या पोकरण के ठाकुर ही नियुक्त किए जाते थे, उनको जागीरों के पट्टों पर 'प्रतिहस्ताक्षर' करने का अधिकार था। बगड़ी का ठाकुर अपने दाहिने अंगूठे से शासक को रक्त से राजतिलक करते थे। सीमा सुरक्षा का उत्तरदायित्व परिहार जागीरदारों को ही दिया जाता था।

गैर चाकरी का पट्टा

इस प्रकार के पट्टे उन्हें दिए जाते थे जिन्हें किसी प्रकार की चाकरी नहीं करनी पड़ती थी। इसे घर बैठा री जागीर भी कहते थे। इस प्रकार के पट्टे बधारा या इनाम में दिए जाते थे।

जीविका

यह राजकीय परिवार को दी जाती थी। ये लोग चाकरी से मुक्त होते थे, तीन पीढ़ी के पश्चात् उन्हें रेख देनी पड़ती थी ।

जूनी जागीर

वे जागीरदार जिनकी कि जागीर ले ली जाती थी। ये लोग चाकरी से मुक्त होते थे उन्हें उनके भरण–पोषण के लिए शासक के द्वारा कुछ भूमि दे दी जाती थी उसे 'जूनी जागीर' के नाम से जाना जाता था।

बीकानेर

प्राचीन समय से ही साम्राज्य की स्थिरता और शक्ति का आधार उसकी सेना रही है। साम्राज्य का विस्तार अथवा गौरव इसकी सक्रियता पर निर्भर करता था। राठौड़ों के राज्य जोधपुर की भाँति बीकानेर भी 'भाई वन्त' प्रथा पर आधारित था।

राव बीका (1472–1504 ई.) अपने जीवन काल में जांगल प्रदेश तथा आसपास की विभिन्न शक्तियों से संघर्षरत रहा।[18] इन युद्धों तथा भाइयों के साथ सम्बन्धों ने उसे सदैव इस स्थिति में रखा कि वह कोई ऐसा कार्य न करे जिससे राठौड़ों की एकता भंग होती है अतः उसने राठौड़ कुलीय भाई–बन्धु भावनाओं का सम्मान किया तथा अपने सम्बन्धियों द्वारा दी गई सेवाओं को मान्यता प्रदान की फलस्वरूप राठौड़ों की खाँप में अलग–अलग इकाई के रूप में बंट गया। राव बीका के उत्तराधिकारी इस

स्थिति से सन्तुष्ट नहीं थे, वे राज्य के बाह्य शत्रुओं से लड़ते समय अपने प्रमुख सामन्तों के असहयोगों का शिकार होकर मृत्यु को प्राप्त हो गए थे। राव जैतसी की मृत्यु के पश्चात् बीकानेर पर, जोधपुर के राव मालदेव की सेनाओं का अधिकार हो गया। राव जैतसी के उत्तराधिकारी राव कल्याणमल ने यही श्रेयस्कर समझा कि कुलीय परम्पराओं से समझौता करके खोए हुए राज्य को पुनः प्राप्त करें, इसके लिए उसने दिल्ली के अफगान सुल्तान शेरशाह की सहायता मांगी जो राव मालदेव का शत्रु था। इसी तथ्य ने आगे चलकर बीकानेर के राठौड़ों को मुगलों से सन्धि करने के लिए प्रेरित किया। राव कल्याणमल ने अकबर की अधीनता स्वीकार कर ली और बीकानेर के शासक मुगल साम्राज्य के विश्वसनीय अमीर व मुगल साम्राज्य के स्थायी स्तम्भ बन गए।[19] राजा रायसिंह ने इस क्षेत्र में राजतन्त्र स्थापित किया।[20] उन्होंने स्थानीय जातियों के राजनैतिक अधिकारों का दमन करके उन्हें साधारण नागरिक की स्थिति में ला दिया, परिणामस्वरूप खालसा भूमि विकसित हुई और राज्य प्रशासन हर क्षेत्र में लागू किया गया। इसी प्रकार कुलीय भाईचारे के सिद्धान्त को भी प्रभावहीन बना दिया गया तथा पट्टेदारी प्रथा लागू की गई जिसके अनुसार वे अपनी जागीर का पट्टा शासक को दी गई सेवाओं के बदले वेतन के रूप में प्राप्त करने लगे।

पट्टा वह प्रपत्र था जिसके अर्न्तगत नकदी के अतिरिक्त उन राजकीय क्षेत्रों से केवल भू–राजत्व वसूली के अधिकार दिए जाते थे। इसके अतिरिक्त किसी अन्य मद से धन लेना होता था तो पट्टे में उसका विवरण दिया जाता था सल्तनत काल में इक्तादारी मुगलों के समय में मनसबदारी की भांति ही राठौड़ शासकों ने पट्टादारी प्रथा अपनाई थी। राठौड़ शासकों को मुगल मित्रता से प्राप्त उपलब्धियों की कीमत चुकानी पड़ी थी। वे विभिन्न क्षेत्रों में स्वतन्त्र कार्यवाही करने का अपना अधिकार खो बैठे थे। सम्राट को समय–समय पर भेंट देने के लिए राज्य से पेशकसी वसूल की जाती थी। मुगल–राठौड़ सन्धि के फलस्वरूप राठौड़ शासक अपने राज्य के आन्तरिक प्रशासन में पूर्ण रूप से स्वतन्त्र थे।

सामन्त वर्ग

जोधपुर की भाँति ही राज्य का सामन्त वर्ग तीन भागों में विभक्त था।

1. राव बीका के वंशज
2. राव बीका के भाई तथा चाचा के वंशज[21]
3. स्थानीय जातियों के ठिकानेदार तथा मुखिया

राज्य के मुख्य सामन्तों में काँधल व बीका के वंशज थे। राजा रामसिंह व उनके उत्तराधिकारियों ने प्रभावशाली सामन्तों को नियन्त्रित करने के लिए भिन्न–भिन्न नीति अपनाई थी उन्होंने बीदावतों को तोड़ने के लिए उनकी क्षेत्रीय ईकाइयों को उनके छोटे भाईयों में बांट दिया था। इसी प्रकार काँधलोतों को नियन्त्रित करने के लिए उनके ठिकानों के पास बीका के वंशजों को ठिकाने दिए गए थे। इस प्रकार से शक्ति सन्तुलन स्थापित किया। राज्य के राठौड़ सामन्त अनेक शाखाओं में विभक्त थे।

बीकावत

ये राज्य के संस्थापक राव बीका के वंशज थे। राज्य के सामन्तों में सबसे अधिक संख्या इन्हीं की थी। राज्य के चार सिरायत ठिकानेदार इस प्रकार थे – महाजन के रतनसोत बीका, भूकरका के श्रृंगोत बीका, बीदावत के बीदावत तथा रावतसर के काँधलोत थे।

बीका राठौड़ अनेक शाखाओं में विभक्त थे–

रतनसोत बीका

यह बीकावत ठाकुरों में प्रमुख थे। इनका मुख्य ठिकाना महाजन था। इनकी संख्या बीका राठौड़ों में सबसे अधिक थी।

श्रृंगोत बीका

यह राव जैतसी के पुत्र श्रृंगा जी के वंशज थे (इसके वंश के श्रृंगाजोत बीका कहलाये)। बीका राठौड़ों में इनका स्थान रतनसोत के बाद आता है। इनके मुख्य ठिकाने भूकरको, सीधमुख व अजीतपुरा थे।

भीमराजोत बीका

यह भीमराज के वंशज तथा राव जैतसी के पुत्र थे। इनका ठिकाना राजपुरा में था। बीका पट्टे में इनकी स्थिति वि.सं. 1725 में 3.95 प्रतिशत थी। वि.सं. 1875 में 4.47 प्रतिशत थी। वि.सं. 1725 में इनके पास प्रति पट्टायत 7.5 गाँव थे।

पृथ्वीराजोत बीका

यह पृथ्वीराज के वंशज राजा रायसिंह के भाई थे। इनका ठिकाना ददेरवा था। बीका पट्टों में इनकी स्थिति वि.सं. 1725 में 2.50 प्रतिशत थी, जो वि.सं. 1739 में घटकर 1 प्रतिशत हो गई और वि.सं. 1875 में 1.66 प्रतिशत रही। प्रति पट्टायत इनके पास दो गांव थे, जो कि प्रति बीका पट्टा औसत 1.38 संख्या कम थी।

बाघावत

यह राव जैतसी के पौत्र, ठाकुरसी के पुत्र (इसने जैतपुर बसाया), बाघसिंह के वंशज थे।[22] इनके पास जागीर में भटनेर, नौहर व सीधमुख रहे थे। कुल बीका पट्टे में इनकी स्थिति वि.सं. 1857 में 1.19 प्रतिशत थी। प्रति पट्टायत इनके पास एक गावँ रह गया था।

अमरावत

ये अमरसिंह के वंशज राव कलयाणमल के पुत्र थे। कुल बीका पट्टों में इनकी स्थिति वि.सं. 1725 में 8.73 प्रतिशत थी जो वि.सं. 1739 में 5.83 प्रतिशत हो गई थी तथा वि.सं. 1875 में 2.38 प्रतिशत रह गई थी। प्रति पट्टायत इनके पास तीन गाँव थे।

नारणोत

ये नारंग के वंशज, राव लूणकरण के पौत्र तथा जैतसी के पुत्र थे। कुल बीका पट्टों में वि.सं. 1739 में 7.91 प्रतिशत तथा वि.सं. 1875 में 0.95 प्रतिशत थी। प्रति पट्टायत इनके पास 2.77 गाँव थे।

घड़–सियोत

ये राव बीका के पुत्र घड़सी के वंशज थे, बीका पट्टों में इनकी स्थिति कुल बीका पट्टों में वि.सं. 1739 में 13.78 प्रतिशत थी तथा वि.सं. 1753 में 16 प्रतिशत हो गई लेकिन वि.सं. 1857 में 5.23 प्रतिशत थी। प्रति पट्टायत इनके पास वि.सं. 1739 में 12.5 प्रतिशत गांव वि.सं. 1753

में 18 प्रतिशत गांव तथा वि.सं. 1875 में प्रति पट्टायत 11 गांव थे।

किशनसिघोत बीका

ये राजा रायसिंह के पुत्र किशनसिंह के वंशज थे। बीका पट्टों में इनकी स्थिति वि.सं. 1875 में 10.78 प्रतिशत थी और प्रति पट्टेदार 22 गांव थे।

काँधलोत

बीकावत पट्टायतों के पश्चात् काँधलोत राठौड़ों की स्थिति भी सम्मानजनक थी "रावत काँधल" राव बीका के चाचा थे। इन्हीं के सक्रिय सहयोग से राव बीका ने बीकानेर राज्य स्थापित करने का निश्चय किया था। उनकी मृत्यु के पश्चात् उनके पुत्रों में सारे ठिकाने बंट गए।

रावतोत बीका

ये काँधल के बेटे थे। इनका मुख्य ठिकाना रावतसर था। वि.सं. 1725 में बीका पट्टों में इनकी स्थिति 25.8 प्रतिशत थी। प्रत्येक पट्टायत के पास 12 गाँव थे। रावतों के ठिकानों में रावतसर, गंगानगर मंडल का ठिकाना मुख्य गिना जाता था। यह बीकानेर के चार सिरायतों में से एक था।

गोपालदासोत

ये रावत राजसिंह के वंशज थे। वि.सं. 1725 में इनकी स्थिति काँधलोत पट्टों में सबसे कम 12.26 प्रतशित व प्रति पट्टायत 3 गाँव थे।

वणीरोत

ये वणीर जी के वंशज थे। इनका मुख्य ठिकाना चूरू था। वि.सं. 1768 में बीका पट्टों में इनकी स्थिति 44. 70 प्रतिशत थी तथा प्रति पट्टायत इनके पास तीन गाँव थे।

बीदावत

राव बीका के भाई, रावबीदा के वंशज बीदावत ठाकुर कहलाते थे। राव बीदा ने अपने क्षेत्र को अपने तीन पुत्रों में बांट दिया था। बीदावतों की विभिन्न खाँपें निम्न थीं –

केसोदासोत

ये राव बीदा के पौत्र तथा सांगा के पुत्र गोपालदास के वंशज थे। वि.सं. 1725 में कुल बीदा पट्टों में इनकी स्थिति 42.5 प्रतिशत थी। अट्ठारहवीं शताब्दी में इनकी स्थिति गिरने लगी केवल 17.82 प्रतिशत की प्रति पट्टायत रह गई तथा प्रति पट्टायत इनके पास 4.7 गांव थे।

खंगारोत

ये बीदा के पुत्र संसार चन्द्र के वंशज थे। वि.सं. 1725 में कुल बीदा पट्टों में इनकी स्थिति 27.01 प्रतिशत थी। प्रति पट्टायत इनके पास 4.7 गाँव थे।

मदनावत

ये बीदा के पुत्र संसार चन्द्र के दूसरे पुत्र थे। वि.स. 1725 में कुल बीदा पट्टों में इनकी स्थिति 17.81 प्रतिशत थी। प्रति पट्टायत इनके पास 5.16 गांव थे।

मनोहरदासोत

यह गोपालदास के पुत्र मनोहर दास के वंशज थे, वि.सं. 1723 में इनकी स्थिति कुल बीदा पट्टों में 3.44 प्रतिशत थी जो कि वि.सं. 1739 में 2.92 प्रतिशत रह गयी। इनके पास प्रति पट्टायत 1.5 गांव थे।

मण्डलावत

ये राव बीका के चाचा "मण्डलाजी" के वंशज थे। इनका मुख्य "ठिकाना" सारूँडा गांव था। वि.सं. 1725 में कुल आसमीदार चाकरी पट्टों में इनकी स्थिति 1.49 प्रतिशत हो गयी थी तथा वि.सं. 1857 में मात्र 0.73 प्रतिशत रह गयी थी तथा प्रति पट्टायत इनके पास एक गाँव था।

रूपावत

ये राव बीका के साथ मारवाड़ से आए थे। वि. सं. 1725 में इनकी स्थिति आसामीदार चाकर पट्टायतों में 2.24 प्रतिशत हो गई थी लेकिन वि.सं. 1857 में मात्र 0.73 प्रतिशत रह गयी थी तथा प्रति पट्टायत वि.सं. 1682 में 3 गांव थे जो वि.सं. 1725 में 1.6 गांव तक पहुंच गई थी।

नाथोत

ये तब राव बीका के चाचा नाथू जी के वंशज थे इनका ठिकाना चानी था।[23] वि.सं. 1725 में कुल बीका पट्टों में इनकी स्थिति बढ़कर 1.02 प्रतिशत हो गई थी तथा प्रति पट्टेदार इनके पास 1 गाँव था।

राठौड़ों की विभिन्न खाँपों के अलावा अन्य महत्त्वपूर्ण ठिकाने थे जो कि राज्य की स्थापना के बाद यहाँ आ बसे थे। सांखला, वाधोड़, भाटी, जोहिया ये देशी ठाकुर "पट्टायत" कहलाते थे।[24]

पट्टे की शर्तें

पट्टायतों के मुख्य कर्त्तव्य उनके पट्टे में ही लिखे होते थे। उनका प्रमुख कर्त्तव्य राज्य की सैनिक सेवा करना होता था, जिसका विवरण पट्टे में दिया जाता था। इसके अलावा उसके महत्त्वपूर्ण कर्त्तव्य अपने पट्टों से करों को वसूल करना तथा आजादी को बनाए रखना होता था। चाकरी के पट्टे प्रत्येक खाँप व जाति को दिये जाते थे लेकिन वह खाँप जो शासक के निकट सम्बन्धी नहीं होते थे और जिन्होंने अपने शौर्य को प्रमाणित कर रखा था, उनको अधिकतर सीमा पर ही पट्टे प्रदान किये जाते थे। जिससे कि राज्य की सुरक्षा सरलता से की जा सके, इस आधार पर काँधलोत आदि के पट्टे सीमा पर ही थे।

पिता की मृत्यु के पश्चात् पट्टा उसके पुत्र या भाई को प्रदान किया जाता था। वि.सं. 1685 में महाजन के ठाकुर जगतसिंह की मृत्यु के पश्चात् उसके पुत्र अजयसिंह को पट्टा प्रदान किया गया।

कभी–कभी पट्टा छीन कर दूसरे को भी सौंप दिया जाता था। वि.सं. 1749 में महाराजा अनूपसिंह ने ठाकुर अमरसिंह अणदसिघोत से पट्टा छीनकर कर लखवीर राज को सौंप दिया था।[25] पट्टायत दो प्रकार के थे –

1. आसामीदार चाकर पट्टायत
2. चाकर पट्टायत

आसामीदार चाकर पट्टायत में मुख्य बीका, बीदा, काँधल, मंडला, रूपा के वंशज थे। इनका शासक के साथ रक्त के विशेष सम्बन्धों के कारण राज्य में राठौड़ कुलीय भाईचारे का महत्त्व था तथा इनके पूर्वजों द्वारा अपनी जागीर का निर्माण स्वयं किय गया था। ठाकुर अपने पट्टे के क्षेत्र में निश्चित सम्मानजनक क्षेत्रीय दावा रखते थे।

परदेशी ठाकुरों में भाटी व साँखले भी इसी श्रेणी में आते थे।

चाकरी पट्टायत

राज्य में आसामीदार चाकर पट्टायतों के छुटभाइयों को तथा देशी परदेशी राजपूतों को उनकी सैनिक व प्रशासनिक सेवाओं के बदले "चाकरी पट्टे"[26] प्रदान किए गए थे। यह पट्टे भी वंशानुगत नहीं होते थे। चाकरी पट्टायतों का भविष्य पूर्णतया शासक की कृपा पर निर्भर था, जो कि अधिकांश एक पट्टायत के जीवन काल में ही समाप्त हो जाता था।

आसामीदार व गैर आसामीदार चाकर पट्टायत

इस प्रकार के पट्टे अधिकांशः सीमा क्षेत्र पर ही शासक के द्वारा दिए गए थे। शासकों को मुगलों से 'तनख्वाह जागीर' के रूप में जो परगने उनकी "वतन जागरी" के समीप के क्षेत्र में प्राप्त हुए थे उन परगनों में उन्होंने आसामीदार चाकरी पट्टे प्रदान किए थे।[27]

कामदारों हजूरियों के पट्टे

पट्टा प्रणाली केवल सैनिक सेवा तक सीमित नहीं था बल्कि प्रत्येक प्रकार की चाकरी के वेतन के रूप में भी पट्टे प्रदान करने का प्रचलन था। इस प्रकार के पट्टे 'रिजक पट्टे' कहलाते थे। राजा के निजी सेवक हजूरियों तथा विभागों के कार्याध्यक्षों को भी वेतन–भोगी पट्टे दिये जाते थे। ये पट्टे केवल चाकरी काल के लिए ही दिये जाते थे। इन पट्टों का भी हस्तान्तरण होता रहता था। केवल हजूरियों में कुछ आसामीदार पट्टों के गाँव थे।[28]

बेतलब पट्टे

इस प्रकार के पट्टे विभिन्न व्यक्तियों को प्रदान किए गए थे। वे पट्टे निम्नांकित थे –

राजलोकों के गाँव

ये पट्टे शासक की ओर से, शासक के निजी सम्बन्धियों को, उनकी जीविका व सम्मान को बनाए रखने हेतु पट्टे प्रदान किए जाते थे। इसमें राजकुमारों को व रानियों को दिए जाते थे। भाईयों के पट्टे राजा के भाई व उनके पुत्रों को दिए जाते थे।

सार्सण व पुण्यार्थ गाँव[29]

साधारणतया इस प्रकार के पट्टों को ब्राह्मणों, चारणों व संन्यासियों को दिए जाते थे। ये मूलतः माफी के पट्टे होते थे जो कि वंशानुगत होते थे तथा इनके साथ कोई चाकरी की शर्त नहीं होती थी।

व्यवसायिक पट्टे

राजमहल अथवा दरबार की आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु जो व्यवसायिक जातियों विभिन्न कार्य करती थीं, उनकों भी व्यवसायिक पट्टे दिए जाते थे।

निष्कर्ष

इस प्रकार हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि इन दोनों ही राठौड़ राज्यों में यद्यपि ऊपरी तौर पर व्यवस्था एक जैसी थी, परन्तु इसके बाद भी उसमें मूलभूत अन्तर था। दोनों ही राज्यों में सम्पूर्ण सैन्य व्यवस्था पट्टादारी पर आधारित थी, परन्तु हमारे अध्ययन काल में बीकानेर राज्य में इस व्यवस्था का आधार 'प्रति गाँव', चाकरी के घोड़ों की संख्या निश्चित करना था, जबकि जोधपुर के गाँव को आधार न मानकर 'रेख' को आधार बनाया गया था। स्वाभाविक रूप से जोधपुर की पट्टा प्रथा पर आधारित सैन्य व्यवस्था अधिक उत्तम थी। दोनों ही राज्यों में चाकरी के और गैर चाकरी के पट्टे प्रदान किए जाते थे, तथा अपने सामन्तों और सैनिकों की व्यवस्था पर उचित ध्यान दिया जाता था। राज्यों की पट्टों की व्यवस्था ही सैनिक व्यवस्था का मुख्य आधार था।[30]

सन्दर्भ ग्रंथ सूची

1. *शर्मा, दशरथ, अर्ली चौहान डायनेस्टीज, मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी, 1975, पृ. 148*
2. *शर्मा, दशरथ, अर्ली चौहान डायनेस्टीज, मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी, 1975, पृ. 148*
3. *ओझा, गौरीशंकर हीराचन्द, जोधपुर का इतिहास, प्रथम खण्ड, राजस्थानी ग्रन्थागार, जोधपुर, 2010, पृ. 97–111*
4. *ओझा, गौरीशंकर हीराचन्द, जोधपुर का इतिहास, प्रथम खण्ड, राजस्थानी ग्रन्थागार, जोधपुर, 2010, पृ. 97–111*
5. *मुंहता नैणसी कृत मुंहता नैणसी री ख्यात (भाग 1, 2, 3), संपादक आचार्य बद्रीप्रसाद साकरिया, राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर, 1962, 1984, 1993 क्रमशः, पृ. 308–309*
6. *ओझा, गौरीशंकर हीराचन्द, जोधपुर का इतिहास, प्रथम खण्ड, राजस्थानी ग्रन्थागार, जोधपुर, 2010, पृ. 161*
7. *भार्गव, वी.एस., मारवाड़ एण्ड द मुगल एम्परर्स, मुन्शीराम मनोहरलाल, दिल्ली, 1966, पृ. 17*
8. *भार्गव, वी.एस., मारवाड़ एण्ड द मुगल एम्परर्स, मुन्शीराम मनोहरलाल, दिल्ली, 1966, पृ. 38–40*
9. *भार्गव, वी.एस., मारवाड़ एण्ड द मुगल एम्परर्स, मुन्शीराम मनोहरलाल, दिल्ली, 1966, पृ. 70–74*
10. *राणावत, मनोहर सिंह, इतिहासकार मुहणोत नैणसी और उनके इतिहास ग्रन्थ, शिवलाल अग्रवाल, आगरा, 1960, पृ. 173*
11. *व्यास, आर.पी., मारवाड़ में सामन्त प्रथा, भाग 1, राजस्थानी शोध संस्थान चौपासनी, जोधपुर, 1990, पृ. 39–43*
12. *व्यास, आर.पी., मारवाड़ में सामन्त प्रथा, भाग 1, राजस्थानी शोध संस्थान चौपासनी, जोधपुर, 1990, पृ. 39–43*
13. *ओझा, गौरीशंकर हीराचन्द, जोधपुर का इतिहास, प्रथम खण्ड, राजस्थानी ग्रन्थागार, जोधपुर, 2010, पृ. 156–171*
14. *मुंहता नैणसी कृत मारवाड़ रा परगनां री विगत, भाग 1, 2, 3, संपादक नारायण सिंह भाटी, राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर, 1968, 1969, 1974, पृ. 25*
15. *शर्मा, जी.एन., मेवाड़ एण्ड द मुगल एम्परर्स (1526–1707 ई.), शिवलाल अग्रवाल, आगरा, 1954, पृ. 184*
16. *रेउ, पं. विश्वेश्वरनाथ, मारवाड़ का इतिहास, द्वितीय भाग, राजस्थानी ग्रन्थागार, जोधपुर, 2009, प. 193–194*

17. रेउ, पं. विश्वेश्वरनाथ, मारवाड़ का इतिहास, द्वितीय भाग, राजस्थानी ग्रन्थागार, जोधपुर, 2009, प. 193–194
18. ओझा, गौरीशंकर हीराचन्द, बीकानेर राज्य का इतिहास, प्रथम खण्ड, राजस्थानी ग्रन्थागार, जोधपुर, 2013, पृ. 96–99
19. सिंह, डॉ. करणी, दी रिलेशन्स ऑफ दी हाऊस ऑफ बीकानेर विद दी सेन्ट्रल पावर्स (1465–1949 ई.), मुन्शीराम मनोहरलाल पब्लिशर्स प्रा.लि., नई दिल्ली, 1974, पृ. 115
20. टॉड, कर्नल जेम्स, एनल्स एण्ड एण्टीक्विटीज ऑफ राजस्थान, द्वितीय खण्ड, संपादक विलियम क्रुक, अनुवादक डॉ. ध्रुव भट्टाचार्य, राजस्थानी ग्रन्थागार, जोधपुर, 2015, पृ. 325
21. फरमान व निशान की सूची, फरमान न. 86, 91, इन्हें राव अथवा रावत की उपाधियों से सम्मानित किया गया था, राजस्थान राज्य अभिलेखागार, बीकानेर
22. परवाना बही न. 22/3, वि.सं. 1749, राजस्थान राज्य अभिलेखागार, बीकानेर
23. सिंढायच, दयालदास कृत दयालदास री ख्यात, डॉ. दशरथ शर्मा, अनूप संस्कृत पुस्तकालय, बीकानेर, 2005, पृ. 88 10क
24. चोपनियों रे कागदों री नकल, बही न. 191, वि.सं. 1865, राजस्थान राज्य अभिलेखागार, बीकानेर
25. शर्मा, गोपीनाथ, आधुनिक राजस्थान का इतिहास, ग्रन्थ भारती, जयपुर, 1994, पृ. 221–248
26. पट्टा बही वि.सं. 1753, पृ. 8–9, राजस्थान राज्य अभिलेखागार, बीकानेर
27. ओझा, गौरीशंकर हीराचन्द, राजपूताने का प्राचीन इतिहास, राजस्थानी ग्रन्थागार, जोधपुर, 2014, पृ. 247
28. परवाना बही, वि.सं. 1800, पृ. 72–89, राजस्थान राज्य अभिलेखागार, बीकानेर
29. परवाना बही, वि.सं. 1800, पृ. 72–89, राजस्थान राज्य अभिलेखागार, बीकानेर
30. रेउ, पं. विश्वेश्वरनाथ, मारवाड़ का इतिहास, द्वितीय भाग, राजस्थानी ग्रन्थागार, जोधपुर, 2009, प. 193–194